वार्षिक सदस्यता शुल्क - रु. २५/-

स्वानुभूतिप्रकाश

प्रकाशक :
श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट
भावनगर - ३६४ ००१.

उत्तम क्षमावणी पर्वकी महिमा

गुणग्राही पूज्य भाईश्री शशीभाईके जीवनका एक प्रेरक प्रसंग...

यह जो (क्षमापना) का व्यवहार है, यह भी जैन संप्रदाय के सिवाय कहीं नहीं है। वैर और वैमनस्य को अंत:करणसे धो डालने के लिये बहुत ही उच्च कोटि का यह व्यवहार है। मेरे हाथमें तो उस दिन तक जैनदर्शनके शास्त्र आये नहीं थे। लेकिन मेरे साथ मुम्बईमें काम करने वाले भाई श्वेताम्बर जैन थे। वैसे तो साथमें काम करने में थोड़ी नोक-झोंक तो हो ही जाती है। संवत्सरीके दिन वे प्रतिक्रमण करके आये और मुझसे क्षमा माँगी, तो मुझे ऐसा लगा कि ओहो! मेरे से उम्रमें वे बहुत बड़े थे, क्षमा माँग रहे हैं ! इन लोगों का यह व्यवहार तो बहुत ज़बरदस्त है। बहुत ही अच्छा है। यानी इस तरीके से किसी को भी छाप पड़े। गुणद्रष्टि हो और गुण के प्रति यदि आकर्षण हो तो यह व्यवहार ऐसा है कि छाप पड़े बिना रहे ही नहीं।

जिनके साथ संबंध बिगड़ गए हों, जिनके साथ आपसमें किसी प्रकारकी कडवाहट हो गई हो, वैर हुआ हो, वैमनस्य हो गया हो, व्यवहारमें कुछ भी ऊँच-नीच हो गई हो। जो शुद्ध अंत:करण से इन्सान क्षमा माँगे तो सामनेवालेके आत्मा के ऊपर (असर हुए बिना) रहे ही नहीं। गुण-दोष की दृष्टिसे व्यवहारकी जो यह व्यवस्था है, समन्वय है ये बहुत ही उच्च कोटि का है। यह भले ही बाह्य व्यवहार है। परन्तु गुण-दोष की दृष्टि से किसी पर भी यह छाप छोड़ जाये ऐसी यह बात है। इन लोगों में यह व्यवहार है। अन्य कहीं भी यह व्यवहार देखनेमें नहीं आता।

-(राजहृदय भाग-१७, प्रवचन नं.३९४)

क्षमापना

आज दिन पर्यंत वीतराग देव-गुरु-शास्त्र प्रति या किसी भी जीव के प्रति जो कुछ भी अविनय और आशातना के परिणाम हुए हों उनकी शुद्ध अंत:करणपूर्वक क्षमा याचते हैं। वीतराग देव-गुरु-शास्त्र एवं वीतराग आप्त पुरुष द्वारा बोधित परमतत्त्व के प्रति सदा शरणागतरूप से रहें यही भावना आज के दिन भाते हैं।

-स्वानुभूतिप्रकाश परिवार

स्वानुभूतिप्रकाश

वीर संवत्-२५४९, अंक-३१०, वर्ष-२५, अक्टूबर-२०२३

श्रावण शुक्ल ५, शनिवार, दि. २३-७-१९६६, योगसार पर पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी का प्रवचन अंश, गाथा-९९,१०० प्रवचन-४२

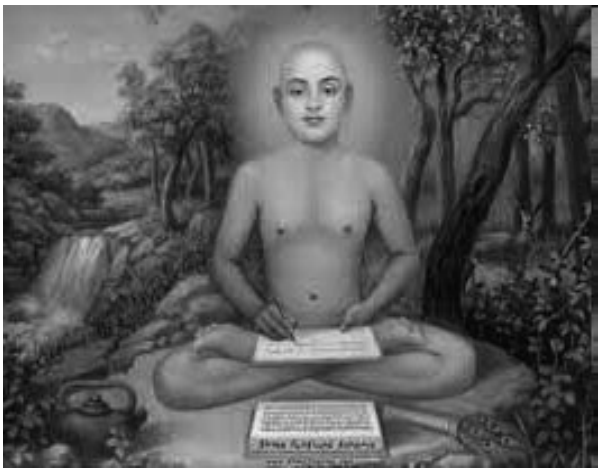

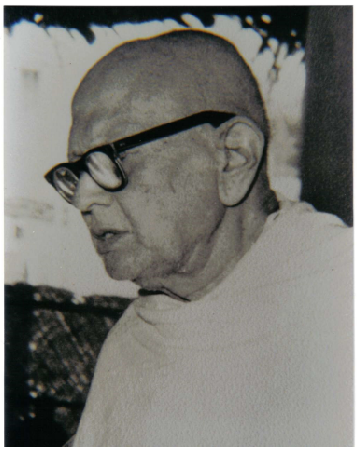

समयसार में आता है न! शक्ति। आत्मज्ञानमय शक्ति है। सभी व्याख्या आ गयी है। **'समस्त विश्व के....** यह दसवीं (शक्ति की) व्याख्या है। **'समस्त विश्व के विशेष भावों को जाननेरूप परिणमित ऐसे आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति।'** आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति इस प्रकार सर्व को जानते हैं, इसलिए व्यवहार हो गया, वह यहाँ नहीं और सर्व को जानते हैं, इसलिए राग हुआ, यह भी यहाँ नहीं। यह सर्वज्ञत्व, आत्मज्ञानमयी सर्वज्ञत्वशक्ति। भगवान आत्मा में सर्वज्ञशक्ति है, गुण है, वह आत्मज्ञानमय दशा होकर सबको जानता है। वह आत्मज्ञानमय होकर, पर होकर, पर के कारण नहीं और पर को जानता है, इसलिए यहाँ सर्व को जाना, इसलिए विकल्प आया और पर को जाना, इसलिए यहाँ उपचार आया - यह यहाँ नहीं है, भाई! आहा...हा...!

आत्मज्ञानमय सर्वज्ञत्वशक्ति। दर्शन में भी ऐसा लिया है - आत्मदर्शनमय सर्वदर्शीशक्ति। आत्मदर्शनमय सर्वदर्शीशक्ति। इस दर्शी शक्ति, ज्ञानशक्ति का स्वभाव ही स्वपने को पूर्ण देखना और पूर्ण जानना, उसमें सब जानना-देखना आ जाता है - ऐसी ही उसकी आत्मज्ञानमय और आत्मदर्शनमय शक्ति है। समझ में आया? इन शक्तियों में तो बहुत वर्णन है, पूरा तत्त्व भरा है न उसमें! इसलिए वही यहाँ कहते हैं।

'समभाव की प्राप्ति को सामायिक कहते हैं।' थोड़ा अर्थ किया है। **'यह भाव तभी सम्भवित होता है जब इस विश्व को....'** निश्चयदृष्टि से देखे तो... इसमें यह कहा न? भाई! सर्वजीव ज्ञानमय देखे, इसका अर्थ क्या हुआ? क्या हुआ इसका अर्थ? निश्चय से देखा; व्यवहार से देखना न रहा। मैं भी जैसे ज्ञानमय, वे भी ज्ञानमय। यह

ज्ञानमय देखना इसमें कोई विकल्प नहीं, वह राग नहीं। यह स्वज्ञानमय, सब ज्ञानमय। निश्चय से मैं ज्ञानमय, निश्चय से सब ज्ञानमय - ऐसी आत्मज्ञान की पर्याय प्रगट होना, उसे समभाव कहते हैं। वह वीतरागभाव है। इसलिए कहा न, देखो न! **'जो सम-भाव मुणेइ, सव्वे जीवा णाणमया, जो सम-भाव मुणेइ'** अरे...! सर्व जीव को इतना सब देखने जाये, वहाँ इसे राग नहीं होगा? कि नहीं। यह तो इस ज्ञान की पर्याय ऐसे सामर्थ्यवाली है कि यह (मैं) ज्ञानमय हूँ और यह सब ज्ञानमय है - ऐसी ज्ञान की पर्याय के सामर्थ्य की दशा है। उसे जानने से मैं भी ज्ञानमय हूँ, पर्याय नहीं। ये सब ज्ञानमय है - ऐसा समभाव से राग की अपेक्षा बिना, पर की अपेक्षा बिना, स्व के सामर्थ्य में स्व-पर का जानना परिणमे, उसे समभाव कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

उसी के सामायिक होती है। देखो! यह सामायिक की व्याख्या। फिर आठ कर्म की लम्बी बात की है। अपने संक्षिप्त कर दी। भाई! संक्षिप्त कर दी न! आठ कर्म में विषमता और विपरीतता या हीनाधिकपना हो, वह पर्यायनय का विषय है। उसे गौण करके... क्यों? कि स्वयं ने भी अपने पर्यायनय के विषय को गौण किया है। भेद को, राग को, अल्पज्ञता को गौण करके; अभाव करके नहीं; गौण करके। व्यवहार का अभाव करके नहीं परन्तु व्यवहार को गौण करके उसे 'नहीं है' (ऐसा कहा) और (निश्चय को) मुख्य करके वह 'है' ऐसा कहा है। केवली भगवान ज्ञान और आनन्दमय हैं, उसे मुख्य करके उसकी अस्तिपने का जहाँ स्वीकार हुआ (वहाँ) समभाव प्रगट हुआ। समझ में आया?

फिर कहते हैं, **'इस प्रकार समभाव लाकर जब ध्याता परजीवों की ओर से उपयोग हटाकर....'** अन्तिम बाद की बाद है, अन्तिम... **'केवल अपने स्वभाव में जोड़ता है, तब निश्चल हो जाता है, आत्मस्थ हो जाता है।'** पीछे, एकदम पीछे अन्तिम थोड़ा (बीच में) लम्बा बहुत किया है। वह तो कर्म की बात से लम्बा किया है। इस कर्म का ऐसा होता है और ऐसा होता है, यह विविधता नहीं देखना इतना। **'निश्चल हो जाता है, आत्मस्थ हो जाता है।'**

भगवान आत्मा ज्ञानमय, आनन्दमय, स्वभावमय, स्वभाववान, ज्ञानवान, ज्ञानमय - ऐसा ही उसका स्वरूप है। ऐसे जो आत्मस्थ होता है, उसे समभाव प्रगट होता है। **'आत्मानुभव में आ जाता है....'** वह आत्मा अनुभव में आ जाता है, स्थिरता। **'तब ही परम निर्जरा के कारणरूप सामायिक चारित्र का प्रकाश होता है।'** शुद्धि, ज्ञानमय प्रभु चैतन्यमय है - ऐसी दृष्टि, ज्ञान और उसके ओर का झुकाव होकर, समभावदशा हुई - इस दृष्टि से पर को भी निश्चय से उसके अपने ज्ञान में स्व-पर सामर्थ्य के कारण पर को भी ज्ञानमय देखने से उसकी दशा में निर्जरा का कारण समभाव उत्पन्न होता है। आहा...हा...! समझ में आया? कहो! यह सामायिक! कितनी सामायिकें की होंगी कितनों ने, यह फिर सामायिक किस प्रकार की निकली? आहा...हा...!

यह एक समय की सामायिक भव के अभाव को करे, इससे इसमें भव का अभाव लिखा है न! क्योंकि ऐसा समभाव हो, उसे भव का अभाव हुए बिना रहता ही नहीं। वह तो उसका फल रखा है। हिन्दी में रखा है और यह तो गुजराती में इसमें रखा है। यह तो भाई ने फिर श्लोक अनुसार शब्दार्थ करके भाई ने किया है। उसमें जरा फल डाला था, जिनवर ऐसा कहते हैं, भगवान आत्मा ज्ञानमय, जिसने वस्तु की त्रिकालीता, अभेदता स्वभाव के साथ इस स्वभाववान को है - ऐसा जिसने दृष्टि से देखा और स्थिर हुआ, उसे भव होते ही नहीं, क्योंकि वस्तु में भव और भव का भाव नहीं है। इस ज्ञानमय देखने में क्या आया? ज्ञानमय आत्मा में क्या आया? भव है इसमें? भव का भाव है? वह तो पर में गया, उसमें कहाँ है वह? आचार्यों के शब्द हैं, यह तो आचार्यों के शब्द हैं। इनमें तो गूढ.गम्भीरता है। इसमें एक-एक शब्द में बहुत आगम बसे हैं। समझ में आया?

ज्ञानमय भगवान है, इस प्रकार जिसे वर्तमान दशा द्वारा त्रिकाल ज्ञानमय है - ऐसा जिसने देखा, उसमें भव

कहाँ है? द्रव्य में भव कहाँ? गुण में भव कहाँ? और जिस द्वारा समभाव से देखा उस भाव में भव कहाँ? और उस भाव में भव के कारणरूप भाव कहाँ? वह भाव तो पृथक् रह गया। समझ में आया? भगवान आत्मा भव के अभाव-स्वभावस्वरूप है तो भव के अभाव स्वभावरूप द्रव्य, गुण, पर्याय - तीनों में व्याप्त गया। लो, और यह आया। क्या कहा? कि भगवान आत्मा जहाँ ज्ञानमय है - ऐसा कहा तो ज्ञानमय यह तो ज्ञान स्वभाव है (और) आत्मा स्वभाववान है - ऐसा जहाँ अन्दर निर्णय और समभाव प्रगट हुआ, उसकी पर्याय में भी ज्ञानमय (भाव प्रगट हुआ), राग में नहीं आया; वहाँ भी ज्ञानमय की पर्याय, श्रद्धामय की पर्याय, स्थिरता की पर्याय प्रगट हुई, इसलिए भव के अभाव-स्वभाववाला द्रव्य, उसका निश्चय होने पर वह भव का अभाव-स्वभाव तीनों में व्याप्त हो गया। द्रव्य में भव का अभावभाव, गुण में भव का अभावभाव और उसे समभाव प्रगट हुआ, उसमें भव का अभावभाव। इससे उसमें विषमभाव नहीं है। आहा...हा...! समझ में आया? यह वस्तु ऐसी है। **'यह तो जिणवर एम भणइ'** यह तो जाना है - ऐसा कहते हैं। कुछ किया है भगवान ने दूसरे का? आहा...हा...! देखो!

निर्जरा का कारण होता है। **'विकल्परहित भाव में रहना ही सामायिक है, वही मुनिपद है, वही मोक्षमार्ग है, वही रत्नत्रय की एकता है।'** लो! ओ...हो...! इसने बात का स्वरूप पदार्थ का (जाना नहीं)। विकल्प आदि हो, राग आदि हो, कमजोरी का भाव (हो) परन्तु कहते हैं कि वह कोई स्थायी चीज है? समझ में आया? पर की ओर के झुकाववाला भाव, वह स्थायी चीज है? वह तो कमजोरी की चीज है। कमजोरी तो वास्तव में व्यवहारनय का, पर्यायनय का विषय हुआ, वह आदरणीय विषय नहीं रहा, जानने योग्य रहा; आदरणीय विषय तो भगवान त्रिकाल ज्ञानमय, आनन्दमय, स्वभावमय, भव के अभाव स्वभावमय आत्मा है - ऐसी दृष्टि होने पर उसे ज्ञान-दर्शन और चारित्र की समभावदशा प्रगट होती है। उसे सामायिक कहते हैं। आहा...हा...!

दिगम्बर सन्तों ने तो थोड़े-थोड़े श्लोक में तो महा-कितना ही भर दिया है! हैं? ओ...हो...हो...! मुनियों की क्या बात! छठे-सातवें में झूलते सन्त, उन्हें यह लिखने का एक विकल्प आया है, हाँ! वह राग भी मुझमें कहाँ है? मुझमें कहाँ है? मैं उसे कहाँ अपने में देखता हूँ? आहा...हा...! लिखने के काल में विकल्प है, वाणी की रचना तो जड़ की है। यह वाणी, यह श्लोक कहीं मुझसे रचित नहीं है।

जहाँ भगवान आत्मा ज्ञानमय है - ऐसा जहाँ देखा, वहाँ विकल्प उठा उसमय नहीं, वह तो पृथक् रह गया। वाणी की क्रिया तो पृथक् जड़ में रह गयी और दूसरे आत्माओं के भेद-भाववाले भाव, वह तो भंग-भेद पर्यायनय के विषय में रह गये। अकेला भगवान, ज्ञान के भगवान सब हैं। पूरा लोक परमात्मा से भरा है। आहा...हा...! दूसरे जल में विष्णु, थल में विष्णु, कहते हैं (- ऐसा नहीं) समझ में आया? पूरा चौदह ब्रह्माण्ड अकेले परमात्मा के पद से ही भरा हुआ पूरा लोक है, इस हिसाब से। सत्व पृथक् अनन्त के, परन्तु हैं सब भगवान, सब ज्ञानमय, पिण्डमय प्रभु हैं सब। दूसरों को तो पता नहीं (तो कहते हैं) जल में विष्णु, थल में विष्णु.... भगवान एक व्यापक है - ऐसा है नहीं तीन काल में। समझ में आया?

इसलिए आचार्य ने भाषा क्या प्रयोग की है? **'सव्व'** शब्द प्रयोग किया है। भिन्न-भिन्न रखकर बात की है। सबको एक करके नहीं। तीन काल में एक नहीं हो सकते, अनन्त की सत्ता, वह अनन्त की पृथक्रूप रहकर, सिद्ध भी पृथक् सत्ता रहकर सिद्ध होते हैं। सिद्ध में होकर एक सत्ता दूसरे में मिल (नहीं जाती)। ज्योत में ज्योत मिल जाती है - ऐसा कितने ही कहते हैं। वहाँ फिर मिल गये। क्या धूल मिले? सुन न!

मुमुक्षु - अलग चौका।

उत्तर - अलग चौका(क्या)? सबका त्रिकाल भिन्न है। त्रिकाल सत्ता का अस्तित्व भिन्न है तो जहाँ मोक्ष

हुआ, वहाँ सत्ता का अभाव हुआ या मोक्ष हुआ वहाँ विकार का अभाव हुआ? विकार का अभाव हुआ तो स्व सत्ता की विकास शक्ति पूर्ण प्रगट हुई, (उस) सहित सत्ता रही है। समझ में आया? यह वस्तु ऐसी है। अन्यमति सब गप्प मारते हैं कि यह सब एक है (ऐसा नहीं)। दूसरे जैन में भी ऐसा कहते हैं। एक था वह भाई! नहीं? मणियार था न भाई! अपने अन्धा... (संवत्) १९९५ में व्याख्यान सुनने आता था। तब अपने यह समयसार चलता था (तब उसने कहा) हाँ महाराज! सत्य है, हाँ! ज्योत में ज्योत मिलायी, फिर सिद्ध हो और फिर ज्योत में ज्योत मिल जाती है। अरे...! ऐसा नहीं है। ऐसे कहाँ गप्प मारे? 'एक में अनेक और अनेक में एक' आता है न स्तुति में? वह तो जहाँ एक भगवान विराजते हैं, वहाँ क्षेत्र में अनन्त है, अनन्त विराजते हैं, वहाँ एक है; प्रत्येक की सत्ता भिन्न है। अस्तित्व हो वह कोई तत्त्व खो बैठे? उसका अस्तित्व गुण ही ऐसा है कि जिस अस्तित्व गुण के कारण प्रत्येक तत्त्व अनादि-अनन्त सत्ता को धार रखा है। यह तो अस्तित्वगुण का गुण है। छह गुण का सामान्यगुण का पहला गुण है अस्तित्व। अस्तित्व कहो या सत् कहो। समझ में आया?

यहाँ आचार्य भगवान कहते हैं कि भाई! आहा...हा...! ऐसा भाव जहाँ तुझे जम गया कि भगवान तो अकेला ज्ञान, चैतन्य सूर्य है, बस! वह क्या करे? वह राग को करे? वह पर का करे? वह राग और पर को पर्याय से भेद को जाने। पर्यायनय से जानने का (करे)। निश्चयनय से वह अभेदज्ञानमय सब आत्मा हैं। वे सब ज्ञानमय आत्मा भी राग को नहीं करते और कर्म के वश हुई दशा उनके ज्ञानमय में नहीं है। समझ में आया? आहा...हा...! ऐसा जिसे अन्तर में ज्ञान की वास्तविकरूप से समता प्रगट हुई है, उसे सामायिक, भगवान परमात्मा **'जिनवर एम भणेइ।'** तीन लोक के नाथ परमेश्वर जिनदेव इसे सामायिक कहते हैं। आहा...हा...! उसे अब भव नहीं। समझ में आया? वस्तु में - द्रव्य, गुण में तो भव नहीं था परन्तु ऐसी पर्याय प्रगट हुई तो अब पर्याय में भी भव नहीं है। आहा...हा...! इसलिए फुडु शब्द प्रयोग किया है न! प्रगट हो गयी सामायिक दशा (उसे) भव नहीं, भव नहीं। आहा...हा...!

(लोगों को) ऐसा लगता है, भगवान जाने भगवान ने कितने भव देखे होंगे? अब सुन न! तू तुझे देखता है तदनुसार भगवान देखते हैं। तू देख कि मैं अरागी हूँ, मुझे संसार नहीं है तो भगवान ऐसा देखेंगे और ऐसी दशा है। ज्ञानमय भगवान आत्मा, आनन्दमय आत्मा स्वभाव का अभेदवाला स्वभाव। स्वभाववान स्वभाव से अभेद है। भव के भाव से अभेद नहीं है। समझ में आया?

देखो यह सामायिक और सामायिक कैसी? किसे होती है? और कैसे होती है? पहले (यह) तीन बोल कहे थे, भाई! शुरुआत में पहले तीन (बोल) कहे थे। कैसी होती है? किसे होती है? कैसे होती है? समझ में आया? पहले आया था या नहीं? और यह तीन क्या? आहा...हा...! भाई! कैसी होती है? ऐसी समता होती है, सामायिक होती है। किसे होती है? ज्ञानमय देखे उसे होती है। समझ में आया? कैसे होती है? स्वभाव का आश्रय करे, उसे होती है। आहा...हा...!

दूसरे सब आत्माओं को.... जब स्वयं भी अपने आत्मा को ज्ञानमय से जहाँ देखता है, जानता है, उस स्थिति में स्वयं ने जहाँ राग और भेद को गौण कर दिया है तो उस प्रकार समस्त आत्मा अपने स्वभाविक दृष्टि से देखने पर उनका भी भेद और राग गौण करके उन्हें ज्ञानमय देखे, बस! समभाव (हो गया); किसी पर विषमपना करना नहीं रहता। यह परमात्मा है, इसलिए वन्दनीय है, ऐसा राग भी नहीं रहता - ऐसा कहते हैं और यह जैनदर्शन का विरोधी है, इसलिए द्वेष (होता है), यह वस्तु में है नहीं - ऐसा कहते हैं। आहा...हा...! समझ में आया?

'श्री योगीन्दुदेव अमृताशीति में कहते हैं - हे मित्र! सच्चे साम्यभाव की गुफा के बीच में बैठकर....' भाषा देखो! अपने समयसार की जयसेनाचार्यदेव की ४९ गाथा की टीका में आता है न? अनुभूति की गुफा में

बैठ। ४९ वीं गाथा में है। जयसेनाचार्यदेव की टीका में है। अनुभूति की गुफा... समझ में आया? **'सचैवोपादेय आत्मा इति मत्वा निर्विकल्पनिर्मोह-निरंजननिजशुद्धात्म-समाधिसंजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे गिरिगुहागह्वरे स्थित्वा'** - कैसी गिरिगुफा? गिरिगुफा का विशेषण प्रयोग किया कि भगवान आत्मा को - शुद्ध पूर्ण है, उसे जानकर....समझ में आया? **'इति मत्वा निर्विकल्पनिर्मोह-निरंजननिजशुद्धात्म-समाधिसंजातसुखामृतरसानुभूतिलक्षणे गिरिगुहागह्वरे स्थित्वा सर्वतात्पर्येण ध्यात्व्य इति।'** यह गिरिगुफा है, बाहर की गिरिगुफा में वह गिरिगुफा ढूँढता है। निवृत्त ही है, तेरी गिरिगुफा यहाँ पड़ी है। समझ में आया? कहीं अकेले जाय... परन्तु यहाँ है या नहीं? तू तो सर्वत्र तू का तू है। समझ में आता है? जहाँ जाये, गिरिगुफा में जाये तो तू तेरे समभाव से देख, तो होता है ऐसा है। यह समुदाय में रहकर बैठा हो तो तू तुझे अकेला देखता हो - ऐसा है। उसमें कहीं कोई बाहर की चीज तुझे व्यवधान करती है या विषमता उपजाती है ऐसी कोई चीज है नहीं। आहा...हा...!

यह तो भाई! बनारसीदासजी ने यह नहीं लिखा? चाहे रहो घर में... पण्डितजी! ऐसा है। चाहे रहो घर में चाहे रहे मन्दिर में, वन में मन्दिर में - ऐसा है। चाहे रहो वन में चाहे रहो मन्दिर में - ऐसा। बनारसीदासजी का कुछ है। बहुत सब पाठ कहीं याद होते हैं? पीछे है, समझ में आया?

आचार्य महाराज क्या कहते हैं? देखो, **'हे मित्र!'** आहा...हा...! कहाँ से निकाला यह? **'सखे'** **'आत्मानमात्मनि सखे'** आहा...हा...! आचार्य (कहते हैं) हे सखा! मेरे साथ का मित्र तू है। आहा...हा...! हम भी स्वभाव को साधकपने ध्याते हैं न! और अब स्वभाव में जाते हैं, हाँ! तू भी सखा-मेरा मित्र है, भाई! आहा...हा...! कितनी करुणा दृष्टि से यह मित्र बनाया, लो! भाषा! सखा! **'हे मित्र! सच्चे साम्यभाव की गुफा के बीच में बैठकर व निर्दोष पद्मासन आदि बाँधकर अपने ही एक आत्मा के भीतर अपने ही परमात्मा स्वरूपी आत्मा को तू ध्यावे, जिससे तू समाधि का सुख अनुभव कर सके।'** अमृताशीति का श्लोक है। साम्यभाव की गुफा... भाई! समता की गुफा में जा! ज्ञानमय भगवान शुद्धरूप को देखने जाये, वहाँ गुफा के अन्दर बैठा - ऐसा कहते हैं। राग से निकल गया, संयोग से निकल गया - ऐसा भगवान आत्मा, अनुभूति लक्षण - ऐसी जो गिरि गुफा में बैठा, उसमें जो समभाव प्रगट हुआ, उसे सुख का अनुभव होता है। ९९ (गाथा पूरी हुई)। १०० यह भी सामायिक की व्याख्या है।

राग-द्वेष का त्याग सामायिक है।

राय-रोस बे परिहरिवि जो समभाउ मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु केवलि एम भणेइ।। १००।।
राग-द्वेष दोऊ त्याग के, धारे समता भाव।
सो सामायिक जानिये, भाषे जिनवर राव।।

अन्वयार्थ - (जो राय-रोस बे परिहरिवि समभाउ मुणेइ) जो कोई राग-द्वेष का त्याग करके समभाव की भावना करता है **(सो फुडु सामाइउ जाणि)** उसको प्रगटपने से सामायिक जानों **(एम केवलि भणेइ)** ऐसा केवली भगवान ने कहा है।

राय-रोस बे परिहरिवि जो समभाउ मुणेइ।
सो सामाइउ जाणि फुडु केवलि एम भणेइ।। १००।।

'फुडु' और **'लहु'** शब्द तो इसमें बहुत आता है। **'लहु'** अर्थात् शीघ्र और **'फुडु'** अर्थात् प्रगट। **'जो कोई राग-द्वेष का त्याग करके....'** अर्थात् विषमता को देखना छोड़कर, **'समभाव की भावना करता है....'** भगवान आत्मा अत्यन्त वीतराग बिम्ब है, वह तो जानने-देखनेवाला त्रिकाल स्वभाव धारण (करनेवाला) तत्त्व है। ऐसा जो अन्तर में समभाव की भावना करता है। **'उसे प्रगटरूप से सामायिक जानो...'** उसकी दशा में सामायिक हुई है। समझ में आया?

मुमुक्षु - भावना अर्थात् राग लेना?

उत्तर - राग की बात कहाँ है? किसने कहा? दूसरा कहता अवश्य है, वह कहता है, हाँ! रतनचन्दजी कहते हैं। अपने वह नहीं, आया था भावना। शुद्धोपयोग की

भावना श्रावक को सामायिक में होती है। जयसेनाचार्यदेव की टीका। भाई! फूलचन्दजी ने लिखा था कि भाई! सामायिक में किसी समय सामायिक आदि में भी श्रावक को भी शुद्ध उपयोग होता है और भावना... भावना का अर्थ ही होता है। भावना विकल्प उसमें ऐसा होता है, ऐसी भावना तो पूरे केवलज्ञान की है। उसकी कहाँ बात है यहाँ? यह तो शुद्धोपयोग का परिणमन सामायिक में किसी समय, सामायिक के अतिरिक्त भी किसी समय पाँचवें गुणस्थान में चौथे में भी ऐसा हो जाता है। किसी समय वह दशा होती है। अन्दर के पूर्ण को - स्वरूप को निर्विकल्परूप से स्पर्शने का भाव अमुक काल में न आवे तो वस्तु नहीं रहती है। आहा...हा...! सूक्ष्म बात है। यह है, जयसेनाचार्यदेव की टीका में है। उस दिन एक बार निकाला था। समझ में आया?

इस भावना का अर्थ क्या है? समभाव। यहाँ तो ऐसा कहा है **'राय-रोस बे परिहरिवि जो समभाउ मुणेइ।'** जानना, ऐसा है। समभाव की भावना करे अर्थात् वीतरागी पर्याय प्रगट करे। अपने स्वभाव में... भाई! ऐसा अवसर, ऐसा काल मिला, प्रभु! तुझमें पूर्णता पड़ी है न प्रभु! तुझे कहाँ ढूँढने जाना है? तेरी नजर पड़े, तुझे निहाल होने का रास्ता है। आहा...हा...! निहाल होने का रास्ता कहीं बाहर नहीं है। आहा...हा...!

भगवान आत्मा....! कहते हैं कि जिसने राग-द्वेष के विषमता के भेद का लक्ष्य छोड़कर, समभाव को **'मुणेइ'**, समभाव को करता है, वहाँ ऐसा लेना। **'मुणेइ** का अर्थ जानता है (होता है) परन्तु उसका अर्थ करते हैं (ऐसा लेना) जो समभाव प्रगट करता है। **'उसे प्रगटरूप सामायिक जानो - ऐसा केवली भगवान ने कहा है।'** देखो, इसमें यह लिखा। **'केवली एम भणेइ उसमें जिनवर एम भणेइ'** (था)। सर्वज्ञ परमेश्वर, जिन्हें एक समय में स्व-पर की पूर्णता का ज्ञान प्रगट व्यक्त (हुआ), शक्ति में था, वह प्रगट हो गया है, ऐसे परमेश्वर ने सामायिक ऐसी कही है। कहो, समझ में आया? आहा...हा...!

इस वस्तु का माहात्म्य और वस्तु के स्वभाव (इसे पता नहीं है)। उसे ऐसे मानो बाहर के माहात्म्य की आड़ में यह आत्मा तो कुछ चीज ही नहीं... वह हो गयी अधिक हो गयी। अधिक शुभराग विकल्प किया और या विशेष ज्ञान हो गया नौ पूर्व का... लो न! (वहाँ तो) आहा...हा...! (हो गया इसलिए) वह अधिक हो गया। यह बड़ा भगवान रह जाता है न! पूरा चैतन्यपिण्ड के माहात्म्य में नहीं आता।

यहाँ कहते हैं कि जहाँ इस माहात्म्य में आया, वहाँ राग-द्वेष छूट गये, उसे प्रगट सामायिक है - ऐसा केवली भगवान कहते हैं। समझ में आया? **'राग-द्वेष का त्याग ही सामायिक है।'** यह भाई बात करते हैं। मिथ्यादृष्टि को ऐसा नहीं है। **'सम्यग्दृष्टि का भाव बदल जाता है।'** वहाँ से शुरु करते हैं। मिथ्यादृष्टि में राग और अल्पज्ञता, और संयोग के अस्तित्व में ही मेरा अस्तित्व है - ऐसा स्वीकार करता है। मिथ्या अर्थात् असत् दृष्टिवाला संयोग में या विकार में या अल्पज्ञ आदि पर्याय में अपना अस्तित्व स्वीकार करता है। इसलिए उसे असत् दृष्टि में राग-द्वेष साथ ही बसे हुए हैं और यह अल्पज्ञ देखे वहाँ अरे... ऐसा? (ऐसा लगता है) विशेष देखे तो, आहा...हा...! पण्डित है, अधिक है (-ऐसा लगता है)। पर्याय से हीनाधिक देखे वहाँ उसे (राग-द्वेष हुए बिना) नहीं रहते। हीन देखो तो ऊं...हूँ... (होता है)। परन्तु यह सब दृष्टि उसे स्वयं की पर्याय की दृष्टि है तो दूसरे के पर्याय के भेद वैसे देखने से उसे छोटा-बड़ापन देखकर राग-द्वेष किये बिना नहीं रहता। समझ में आया?

'सम्यग्दृष्टि का भाव बदल जाता है, वह संसार के सुख का श्रद्धावान नहीं रहता।' आहा...हा...! दृष्टि में इसकी विपरीतता है, उसका उल्लास पुण्य के परिणाम में, पाप के परिणाम में, उसके बन्ध में और उसके फल में वह उल्लसित वीर्य उसका वहाँ रुक गया है। आहा...हा...! अर्थात् पर में ही सुख मानता है। होंश करके मानता है न? ठीक करके मानता है न? पुण्य-पाप के परिणाम, अल्पज्ञता या निमित्तता में ठीक करके माना अर्थात् उसमें सुख माना परन्तु आत्मा आनन्दमूर्ति है,

मुझमें आनन्द है - ऐसा उसने नहीं माना। समझ में आया? आहा...हा...!

छियानवें हजार स्त्रियों के वृन्द में पड़ा परन्तु वह आनन्द कहीं नहीं मानता, हाँ! आहा...हा...! अरे! यह तो दृष्टि की कितनी कीमत है! आहा...हा..! जिसके आनन्द के साक्षात्कार भगवान में देखता है, वह छियानवें हजार (रानियों के) भोग में दिखता हो (परन्तु उसकी) दृष्टि गुलाँट खा गयी है। **'भाव बदल गया है। वह संसार के सुख का श्रद्धावान नहीं रहता।'** आहा...हा...! यह इन्द्र आकर ऐसे सम्मान दे... किसे मान? आनन्द के उल्लिसित वीर्य की स्फुरणा को मुझमें पड़ी है, इसलिए यह इन्द्र यह हैं, वे मुझे ठीक मानते हैं - ऐसा विकल्प करना वहाँ नहीं रहता। उसके कारण नहीं रहता, किसी कमजोरी के कारण असक्ति से अस्थिरता हो जाये, वह चारित्रदोष है। उसके कारण हो, वह मिथ्यादृष्टि का दोष है। समझ में आया?

मुमुक्षु - इष्ट मानता है।

उत्तर - इष्ट को मानकर जो कहते हैं कि विकार मुझे किसके कारण हुआ, (वह) दृष्टि मिथ्यात्व है। वस्तु इष्ट-अनिष्ट है नहीं। वस्तु ज्ञेय है। ज्ञेय के दो भाग करते हैं, वे मिथ्यादृष्टि (भाग) करते हैं। यह मुझे ठीक है, इसलिए मुझे राग हुए बिना रहता ही नहीं; यह मुझे अठीक है तो द्वेष हुए बिना नहीं रहता। ज्ञानी को ज्ञेय के दो भाग हैं ही नहीं। ज्ञानी ज्ञेय को ज्ञेयरूप से जानता है, इष्ट-अनिष्ट उसकी बुद्धि में नहीं है परन्तु कमजोरी के कारण इष्ट-अनिष्ट की वृत्तियाँ उठ जायें, वे पर के कारण नहीं है। इष्ट-अनिष्ट पदार्थ के कारण नहीं और स्वभाव के कारण नहीं; कमजोरी के कारण जरा (राग) खड़ा हो जाये, (वह) असक्ति का चारित्रदोष है। आहा...हा...! समझ में आया?

'सम्यग्दृष्टि का भाव बदल जाता है।' पलट जाता है, दृष्टि में पलटा खाता है। आहा...हा...! **'संसार के सुख का श्रद्धावान नहीं रहता।'** कहीं उसे सुख कहीं श्रद्धा में भासित नहीं होता; भगवान आत्मा में आनन्द भासित होता है। आहा...हा...! जिसके इन्द्र मित्र हों... चक्रवर्ती के मित्र इन्द्र होते हैं, सिंहासन में आकर साथ बैठते हैं। (उसमें) कहीं सुखबुद्धि नहीं दिखती। आहा...हा...! हीरा का सिंहासन हो... वह तो चक्रवर्ती है न! हीरा का सिंहासन (हो) इन्द्र आकर (बैठता है)। पधारो... पधारो... ऊपर से इन्द्र (आवे), साथ बैठे... मित्र। तो उसमें यह ठीक हुआ - ऐसा दृष्टि में है ही नहीं। आ...हा...! यह सब पूर्व के पुण्य का खेल मेरे ज्ञान में ज्ञेय है, वह जानने योग्य है। समझ में आया? यह मेरा निवास, मेरा वास है, वहाँ मेरा निवास है। मेरा वास तो स्वभाव में - आनन्द में है, वहाँ मेरा निवास है। यह राग और इन संयोग में मैं हूँ ही नहीं। समझ में आया? ऐसी सम्यग्दृष्टि की श्रद्धा पलट गयी होती है।

मिथ्यादृष्टि की अनादि से दूसरी (श्रद्धा है)। उसे जहाँ हो वहाँ सुख भासित होता है। भगवान में सुख भासित न होकर जहाँ-तहाँ सुख भासित होता है। पुण्य-परिणाम में और पाप-परिणाम में तथा संयोग-अच्छे मित्र मिले, स्त्री मिली, या लड़का मिला, पद्मिनी जैसी मिली, पैसे मिले तो सुख भासित होता है। कैसा होगा, मूलचन्दभाई! इन पैसेवालों को पूछते हैं? धीरुभाई! पागल के अस्पताल में, पागल, पागल को चतुर कहता है। हैं? पागल का अस्पताल होता है.... आहा...हा...!

पागलपना अर्थात्? जहाँ आत्मा में आनन्द है, वहाँ न मानकर अन्यत्र आनन्द माने, वह मिथ्यादृष्टि पागल है। आहा...हा...! समाधिशतक में तो पूज्यपादस्वामी ने वहाँ तक लिया है कि दृष्टि का भान है, फिर भी विकल्प ऐसा होता है कि मैं इसे समझाऊँ, उससे समझेगा; मैं उससे समझूँ... कहते हैं कि पागल है विकल्प में। समाधिशतक में कहा है, वह पागल-उन्माद है। उन्माद है।

भाई! कहाँ ज्ञानमूर्ति प्रभु में पर की विस्मयता की होंश और प्रतिकूलता से खेद यह वस्तु में नहीं है और उस चीज में भी नहीं है। वे चीजें जो हैं, उनमें होश करने की वृत्ति का कारण वे नहीं है। शोक करने का कारण वे नहीं है और होश तथा शोक करने की चीज आत्मा में भी नहीं

है; पर्याय में खड़ी करता है। पर्यायदृष्टिवाला यह सुख, यहाँ सुख है, यहाँ सुख (है ऐसी वृत्ति खड़ी करता है)। सम्यग्दृष्टि की दृष्टि पलट गयी है। पर में ठीकपने की होश की श्रद्धा जल गयी है। आहा...हा...! समझ में आया?

'उसे अतीन्द्रिय आत्मिक आनन्द की गाढ.श्रद्धा होती है। वह एकमात्र सिद्धदशा का ही प्रेमी रहता है।' मेरी दशा, जैसा दशावान हूँ, वैसी दशा हो, वही भावनावाला सम्यक्त्वी है। यह राग की भावना और अल्पज्ञ रहने की भावना नहीं होती। सर्वज्ञ कैसे वीतराग हुए और सर्वज्ञ हुए? वह अल्पज्ञ और राग में क्यों नहीं रहे? उन्होंने अल्पज्ञता और राग का अभाव करके सर्वज्ञ वीतराग हुए। उनके उपदेश में भी यह आया, अल्पज्ञता और राग की दृष्टि छोड़ और सर्वज्ञ स्वभाव की दृष्टि कर, सर्वज्ञ हो और विज्ञानघन हो! समझ में आया? ऐसा सम्यग्दृष्टि अतीन्द्रिय (आनन्द का) प्रेमी है। **'वह संसार शरीर और भोगों के प्रति सम्पूर्ण विरक्त हो जाता है।'** समझ में आया? इसलिए उसे समता (होती है)। अन्दर में सम्यग्दर्शन के प्रमाण में समता और आगे बढ़ने से चारित्रदोष मिटकर समभाव की स्थिरता होती है और वीतरागपने की समता (होती है), उसे सामायिक कहा जाता है। विशेष कहेंगे.....

(मुमुक्षु : प्रमाण वचन गुरुदेव!)

*

(पृष्ठ संख्या १६ से आगे..)

''जीव अपनी कल्पनासे मान लें कि ध्यानसे कल्याण होता है या समाधिसे या योगसे या ऐसे ऐसे प्रकारसे, परन्तु उससे जीवका कुछ कल्याण नहीं होता।'' स्पष्ट ना दी है; बराबर है ? कृपालुदेवकी यह आज्ञा है और हमें आज्ञाका उल्लंघन नहीं करना चाहिये, बातको छोड़ दी। (उन्होंने कहा) मैंने तो मेरे नामसे विपश्यना की पुस्तक भी छपवाई है - अब क्या करना ? (हमने कहा) पश्चाताप करो, प्रायश्चित ले लेना लेकिन अब क्या किया जाय ? **''जीवका कल्याण होना तो ज्ञानीपुरुषके लक्ष्यमें होता है, और उसे परम सत्संगसे समझा जा सकता है; इसलिये वैसे विकल्प करना छोड़ देना चाहिये।''** ध्यानके विकल्पको छोड़ देना बराबर है- जब पेराग्राफ पढ़ते हैं तो उसमेंसे जो बात हमें लागू होती है, उस बात पर हमारा ध्यान जाना चाहिये। (अगर) ऐसी बात पर हमारा ध्यान नहीं जाये और हम ध्यानशिबिर, ध्यानकेन्द्रमें जाते हैं, उसका अर्थ ये होता है कि स्वाध्यायमें हमारा स्वलक्ष्य है ही नहीं, परलक्ष्यसे ही हम स्वाध्याय करते हैं। इसलिये हमारा ध्यान नहीं जाता; नहीं तो स्वलक्ष्यवाले को, खुदको लागू पड़ती हो ऐसी बात पर ध्यान गये बिना नहीं रहता, वह तुरंत ही पकड़ लेता है कि ये मुझपर लागू होता है और मुझे सुधार कर लेना है, यह मेरी गड़बड़ है, उसमें फेरफार कर लेना है। स्वलक्षवाला तुरंत ही अमलीकरणमें आता है, ऐसी बात है। थोड़ा विस्तारसे लेंगे (आजका समय समाप्त होता है)।

आभार

'स्वानुभूतिप्रकाश' (अक्टूबर-२०२३, हिन्दी एवं गुजराती) के इस अंककी समर्पण राशि डॉ. महेशभाई जयंतिलाल महेता एवं डॉ. गीताबहिन महेशभाई महेता, कांदिवली-मुंबई की ओर से ट्रस्ट को साभार प्राप्त हुई है।
अतएव यह पाठकों को आत्मकल्याण हेतु भेजा जा रहा है।

(पृष्ठ संख्या १७ से आगे..)

समाधान :- उसका मुख्य कारण कि उसका विषय-श्रद्धा का विषय-दृष्टि का विषय (उसमें) श्रद्धा की मुख्यता है इसलिये। ज्ञान का जानने का विषय है। जानने का कार्य करना वह ज्ञान का विषय है और श्रद्धा का कार्य करना वह दृष्टि का विषय है। इसलिये श्रद्धा की मुख्यतासे लिया जाता है अतः सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र (कहते हैं)। पहले ज्ञान तो करता है लेकिन श्रद्धा यदि बराबर नहीं है तो मात्र ज्ञान कार्य नहीं करता। श्रद्धा ज़ोरदार हो तो ही कार्य होता है। लेकिन श्रद्धा ज़ोरदार हो परन्तु ज्ञान बराबर कार्य नहीं करे तो श्रद्धा भी जूठी होती है। दोनोंको परस्पर सम्बन्ध है।

मुमुक्षु :- पहले विकल्परूप ज्ञान तो यथार्थ होना चाहिये। वह नहीं है तो दृष्टि ही मिथ्या है।

समाधान :- हाँ, दृष्टि मिथ्या है।

मुमुक्षु :- परन्तु उतना होने के बाद मोक्षमार्ग में मुख्यरूपसे सम्यग्दर्शन विशेष कार्यकारी है ऐसा कह सकते हैं?

समाधान :- सम्यग्दर्शन विशेष कार्यकारी है। लेकिन ज्ञान भी कार्यकारी है। परन्तु सम्यग्दर्शन की मुख्यता है। उसका ज़ोर अपने अस्तित्व पर है, वह एक कार्य करता है इसलिये।

मुमुक्षु :- एक को ही ग्रहण करता है।

समाधान :- एक को ही ग्रहण करता है। एक पर ज़ोर देकर वह चलनेवाला है इसलिये वह मुख्य कार्य करता है।

(तत्त्वचर्चाका शेष अंश अगले अंकमें...)

करुणासागर 'पूज्य भाईश्री शशीभाई' के ९१वीं जन्म-जयंती महोत्सव पर धार्मिक कार्यक्रम

मुमुक्षुजीवों के परम तारणहार पूज्य भाईश्री शशीभाई का आगामी ९१वीं जन्म जयंती महोत्सव मार्गशीर्ष सुदी-४, दि. १६-१२-२०२३ से मार्गशीर्ष सुदी-८, दि. २०-१२-२०२३ पर्यंत अत्यंत आनंदोल्लासपूर्वक मनाया जायेगा। इस प्रसंग पर मंडल विधान पूजन, पूज्य भाईश्री के ऑडियो एवं विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य गुरुदेवश्री के विडीयो सी.डी. प्रवचन, पूज्य बहिनश्री चंपाबहिन की तत्त्वचर्चा, भक्ति, सत्संग, सांस्कृतिक कार्यक्रम रहेंगे और दि. १९-१२-२०२३ के दिन जिनेन्द्र रथयात्रा का कार्यक्रम रहेगा। इस प्रसंग पर आनेवाले मुमुक्षु निम्नलिखित पते पर पहुँचने की तारीख लिखें, जिससे उनकी आवास एवं भोजन की समुचित व्यवस्था हो सके।

संपर्क: श्री राजेन्द्र जैन, मो. ९८२५१५५०६६

कार्यक्रम स्थल :- श्री शशीप्रभु साधना-स्मृति मंदिर, प्लोट नं. १९४२-बी, शशीप्रभु चौक, रूपाणी सर्कल के पास, भावनगर-३६४००१

श्रीमद् राजचंद्र पत्रांक-१२८ पर पूज्य भाईश्री शशीभाई का कोयम्बतुर में हुआ प्रवचन दिः २७-१२-१९९७

(श्रीमद् राजचंद्र वचनामृत पत्रांक १२८) अब जहाँसे हमें आगे बढ़ना है स्वाध्यायमें (वहाँसे लें)। **''क्षण-क्षणमें पलटनेवाली स्वभाववृत्ति नहीं चाहिये।''** प्रतिक्षण हमारे परिणाम विचित्र प्रकारसे पलटते हैं, चित्रविचित्रता बहुत है। एक ही चीज सुहाती है, वही चीज नहीं सुहाती (है)। जिस पर जीव राग करता है उसीके ऊपर द्वेष करता है। एक ही व्यक्ति हो, एक ही पदार्थ हो लेकिन जीवके परिणामकी विचित्रताका कोई ठिकाना नहीं है। कहते हैं कि अब हमको ऐसा परिणमन नहीं चाहिये। हमको तो शांत, निराकुल, शांतिमय परिणमन चाहिये। जो अमृतकी धारा है, वह सुख-शांतिका अमृत ही हमको पीना है, यह आकुलता-जहर हमको नहीं चाहिये।

''अमुक काल तक शून्यके सिवाय कुछ नहीं चाहिये;...'' इतनी आकुलता विकल्पोंकी हो रही है, विकल्पसे शून्य होना चाहते हैं कि एक दफा तो कुछ कालके लिये विकल्पशून्य अवस्था हो जाय यही मेरी भावना है। भावनाका विषय लिया। **''वह न हो तो अमुक काल तक संतके सिवाय कुछ नहीं चाहिये;...''** संतका समागम, ज्ञानीपुरुषके समागमके सिवाय हमको (कुछ नहीं चाहिये)। निर्विकल्पदशा होना-ऐसी योग्यता में नहीं आये तो इसके लिये हमको संतसमागम चाहिये।

प्रश्न : अमुक काल माने ?

पू.भाईश्री : अमुक काल माने निर्विकल्प होना है, आखिर में क्या होना है ? निर्विकल्प होना है, स्वरूपमें जम जाना है; इसलिये वह बीच-बीचमें जो आता है वह सादिशांत-अमुक काल पर्यंत ही आता

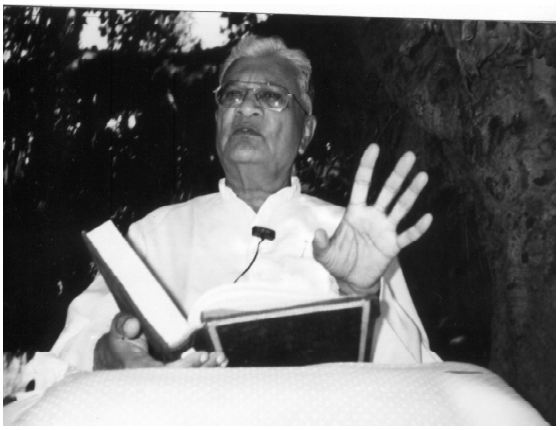

है, अगर वह सत्समागम भी नहीं मिले तो, **''वह न हो तो अमुक काल तक सत्संगके सिवाय कुछ नहीं चाहिये;....''** मुमुक्षुका सत्संग, ज्ञानीका-संतका समागम नहीं मिले तो मुमुक्षु-मुमुक्षु के बीचमें सत्संग करना चाहिये। यह सत्संग मुमुक्षु की खुराक है। अगर रोजाना सत्संग नहीं होगा नियमितरूपसे नहीं होगा तो असत्संग से मनुष्य घिरा हुआ है। असत्संगसे उसके परिणाम है वह गिर जायेंगे, यह बात बनेगी। इसलिये सत्संग तो हमेशा-हमेशा होना ही चाहिये। अगर सत्संग भी उपलब्ध नहीं हो तो, **''वह न हो तो आर्याचरण (आर्यपुरुषों द्वारा किये गये आचरण) के सिवाय कुछ नहीं चाहिये;''** सत्संग भी नहीं मिले तो कमसे कम इतना विचार रखना कि हमारा जो जीवन है, उपजीवन है उसमें सदाचरण बना रहे वरना परिणमनमें गड़बड़ बहुत होगी और आजकल तो परिस्थिति बहुत-बिलकुल गड़बड़वाली है। यह जो परिणमन है वह गिरने लगेगा। इसलिये उसको सँभालना है, सत्संग नहीं मिले तो अपने परिणमनमें

सावधानी रखनी है। सत्संगमें तो सत्संगकी मदद मिलती है लेकिन सत्संग नहीं होता है तब अपना विचारबल ही काममें आता है, वही आत्मबल है। उससे अपने परिणामको सँभालना हैं।

प्रश्न : संग अनेक प्रकारके हैं ?

पू. भाईश्री : बात ठीक है। संगके अनेक विशेषण हैं - परमसत्संग, सत्संग, असत्संग और कुसंग। संगके चार प्रकार हैं। ज्ञानीपुरुषके संगको परमसत्संग कहते हैं, हमसे अधिक गुणवान, (अर्थात्) आगे बढ़े हुए, मुमुक्षुके संगको सत्संग कहते हैं या अपने बराबरीके जो मुमुक्षु हैं उनके संगको भी सत्संग कहते हैं। फिर जो अयोग्यतावाले होते हैं, संसारकी रुचिवाले होते हैं या अपने परिवारके होते हैं, और मित्रमंडलवाले होते हैं, समाजवाले होते हैं, बाजारवाले होते हैं, उनका संग सब असत्संगमें जाता है वह संग - असत्संगमें जाता है और उससे जीव घिरा हुआ है।

प्रश्न : परिवारवालोंके संगको क्या गिनना ?

पू. भाईश्री : परिवारमें आत्मकल्याणकी भावनावाले हो तो सत्संग है और नहीं हो तो असत्संग है। प्राय: - बहुभाग तो असत्संग घरमेंसे ही चालू हो जाता है, बाकी तो (कहीं भी) बाजार जाय, कहीं भी जाय, समाजमें जाय, मित्रमंडलमें जाय, पार्टीमें जाय, सब असत्संग है। सत्संगका अभाव वही असत्संग है। और जो देव-गुरु-शास्त्रका, सत्पुरुषका विरोध करतें हैं और तीव्र दोषके परिणामवाले हैं उनके संगको कुसंग कहते है, शास्त्रमें जितनी सत्संगकी महिमा की है, उतना ही कुसंगका निषेध किया है। सत्संगसे आनंद अमृत मिलता है, कुसंगसे जहरसे भी अधिक नुकसानवाली चीज मिलती है, जिसकी उपमा देनेको नहीं मिलती। जहरकी उपमा भी कम पड़ती है। इसलिये कि कोई जहर पीता है, (तो) एक दफा मरता है। कुसंगमें जानेवाला, कुसंगके असरमें आनेवालेका अनंत संसार बढ़ जाता है। कितना? अनंत संसार बढ़ जाता है, अनंत जन्म-मरण होता है, वह अनंत संसारी है। इसलिये कुसंगसे सावधान रहना।

प्रश्न : धर्म विरोधीसे मिलने-जुलनेमें कुसंग-दोष लगता है क्या?

पू. भाईश्री : मिलने-जुलनेमें तो क्या है ? उदयवशात् मिलना हो जाता है लेकिन वह मिलना जब अच्छा लगता है - तब उसको संग बोलते हैं, क्या? मिलेंगे तो सही, प्रसंगवशात् मिलना हो जाता है, वह पूर्वकर्मकी व्यवस्था है। ठीक है, हमारा बस नहीं चलता लेकिन हम चलाके मिलनेको जाये या वह हमसे मिले तब अच्छा लगे, तो वह कुसंगकी रुचि है। उसका असर आये बिना रहेगा नहीं। इसलिये कुसंगसे बचना, वरना वह अनंत जन्म-मरणका कारण है।

प्रश्न : सत्संगकी रुचिमें अन्य संग नहीं रुचे - ऐसा होता है ?

पू.भाईश्री : वह तो है ही। सत्संगकी रुचि, असत्संग और कुसंगकी अरुचिके साथ ही होती है, automatic (सहज) उसका दूसरा पहलू वही है।

अगर हमारे सदाचरणके परिणाम भी ठीक नहीं रहते हो तो - **''वह न हो तो जिनभक्तिमें अति शुद्ध भावसे लीनताके सिवाय कुछ नहीं चाहिये;...''** कृपालुदेवने मार्गदर्शन भी दिया है कि अगर तुम्हारे परिणाम सत्संगके अभावमें अकेले रहनेमें गिरते जा रहे हो, नहीं चाहते हुए भी, तो शुद्ध भावसे माने शुद्ध हेतुसे, शुद्ध हेतु माने अपने सुधारके शुद्ध अभिप्रायसे जिनभक्तिमें लीन (रहना), जिनभक्ति करना। जिनेन्द्रकी जो भक्ति है उसमें जिनेन्द्र परमात्माका गुणानुवाद है जो एक न्यायसे आत्माका ही गुणानुवाद है। **''जिन सो ही आत्मा, अन्य होय सो कर्म (कर्म कटे) जिन प्रवचनसे''** जिसके प्रवचनसे कर्म कटे **''वही तत्वज्ञानीका मर्म''**, कृपालुदेवने एक पद बनाया है - जिन सोही, है आत्मा। बनारसीदासजीने भी वह बात लिखी है- **''घट घट अंतर जिन बसे, घट घट अंतर जैन।''** घट घट अंतर जिन बसे - सबके अंदरमें जिन परमात्मा बसे हैं, दृष्टि होनी चाहिये। और घट घट

अंतर जैन - सभी जैन ही हैं, कोई अन्य-मति है ही नहीं।

हम सोनगढ़ गये first time, (पहली बार) तब गुरुदेवश्रीके प्रवचन सुननेके टाईम पर पहुँचे थे, प्रवचन पूरा हो गया तो बहिने सब चली जाती थी, भाईलोगमें करीब-करीब, लोग चले जाते थे, दस-पंद्रह आदमी खास-खास interested थे वह बैठते थे। हम भी बैठे रहे। हम तो कुतूहलवृत्तिसे ही गये थे, परीक्षा दृष्टिसे ही गये थे। कुतूहलवृत्ति माने परीक्षादृष्टिसे गये थे (कि) आध्यात्मकी बाते करतें हैं तो वास्तवमें क्या चीज है? तब (गुरुदेवने) मुझे देख लिया (कि इसमें एक) अपरिचित आदमी भी है। तो बोले कौन हैं ? कहाँसे आये हैं? मैं जिसके साथ गया था, उन्होंने जवाब दिया, मैं तो कुछ नहीं बोला, उन्होंने बोला कि मेरे साथ आये हैं, भावनगरसे आये हैं, वैष्णव है लेकिन जैनधर्ममें अच्छी रुचि रखते हैं, संक्षेपमें इतना परिचय दिया, (तो) गुरुदेव क्या बोले ? कि **''यहाँ कोई जैन भी नहीं, अजैन भी नहीं, सभी आत्मा ही आत्मा हैं''** (हमने गुरुदेवश्रीके प्रवचनमें) एक आत्मा ही सुना है और भी कई प्रकारके न्याय आते थे, कई प्रकारकी बातें आती थी लेकिन हमारा ध्यान तो एक ही जगह था, और दूसरी जगह हम ज्यादा ध्यान नहीं देते थे।

ऐसी जिनभक्ति करनी चाहिये और **''वह न हो तो फिर माँगनेकी इच्छा भी नहीं है।''** कमसे कम इतना होना चाहिये। इस प्रकार उतरते क्रममें, मुमुक्षुजीवके परिणाम कैसे होने चाहिये वह बात बताई है।

प्रश्न : यहाँ स्वाध्याय (इत्यादि की) बात नहीं करके, जिनभक्तिकी बात कही, इसमें क्या रहस्य है ?

पू. भाईश्री : स्वाध्यायकी जिसकी क्षमता ही नहीं हो, उसको क्या करना? क्योंकि अकेलेमें तो उसके परिणाम सदाचरणरूप रहते नहीं, इधर-उधर चले जाते हैं, ये व्यापार करे, ये करे, ऐसा करे, वैसा करे, परिवारमें ऐसी व्यवस्था करे, बिजनेसमें ऐसी व्यवस्था करे, वही चलने लगता है। तब उसके लिये जिनभक्ति ठीक है और शास्त्र-स्वाध्यायमें वह बात भी रहती है कि खुद कैसे निश्चय करेगा कि मेरी योग्यतामें कौनसा ग्रंथ मुझे पढ़ने लायक है ? वह खुद कैसे निश्चय करेगा ? फिर जो भी ग्रंथ हाथमें आ जायेगा वह पढ़ लेगा, इससे तो गड़बड़ होनेवाली है। उसको गड़बड़ होनेवाली है, बहुभाग कल्पनामें चढ़ जायेगा। इसलिये सत्शास्त्र है वह कुछ योग्यताके बादमें ही पढ़ना ठीक रहता है, सबके लिये ठीक नहीं है।

अब कुछ सूत्र लिखे हैं। **''समझमें आये बिना आगम अनर्थकारक हो जाते हैं।''** देखो ! यही बात लिखी है, आपको प्रश्न उठता है, इसका उत्तर यहाँ आता है। क्या ? पत्रकी रचना कैसी है ! देखो ! इसलिये शास्त्र-स्वाध्यायकी बात उसमें नहीं आयी, शास्त्र-स्वाध्यायकी बात क्यों नहीं आई? कि गम पड़े बिना आगम अनर्थकारक माने नुकसानका कारण होता है। गम माने क्या ? गुरुगम। गम माने गुरुगम। ज्ञानीपुरुषके पास शास्त्र पढ़नेकी कोई चाबी होती है, वह मिलनी चाहिये। तभी शास्त्र पढ़ना ठीक है। बाकी बुद्धि (होनेसे कोई) शास्त्र पढ़ लेगा तो अर्थ का अनर्थ ही करेगा और शास्त्रमें परस्पर विरुद्ध कथन भी बहुत आते हैं, समाधान कैसे होगा ? और अलग-अलग ज्ञानियोंने अपनी-अपनी शैलीसे अलग शास्त्र लिखे हैं, एक ज्ञानीकी बातसे दूसरे ज्ञानीकी बात मेल नहीं खायेगी तो क्या करेगा ? उलटा और विचारके संकल्प-विकल्पके चक्करमें फँसेगा।

इसलिये गम (समझ) पड़े बिना आगम अनर्थकारक हो जाते हैं। कृपालुदेवने तो मार्गको बहुत सरल किया है कि बस ! तुम सत्संगमें रहो। शास्त्र की बात पहले नहीं की, सत्संग करो बस।

श्रोता : बहिनश्रीके वचनामृतमें भी लिखा है कि सतपुरुषके चरणमें रहना, महापुरुषके चरित्रका स्मरण करना।

पू. भाईश्री : हाँ, ठीक है। वह कथानुयोग है। महापुरुषका चरित्र माने कथानुयोग। फिर भी ग्रंथ पढ़ना हो तो कथानुयोगका पढ़े, भावनाका पढ़ना हो तो बारह भावनाका पढ़े, वह ठीक है। शुरूआतवाले (के लिए) वह अच्छा है।

प्रश्न : चाबी क्या है ?

पू. भाईश्री : चाबी तो वह है - आत्मकल्याणकी अवगाढ़ भावना। इसके बाद ज्ञानमार्गकी प्राप्ति होती है, शास्त्र है वह ज्ञानमार्ग है। क्या है? ज्ञानमार्ग है, और ऐसी अवगाढ़ दशा हुए बिना शास्त्र पढ़नेमें बहुत जोखिम है - बहुत, जोखिम है। ६९३ नंबरका एक पत्र है उसमें वह बात कहते हैं - ज्ञानमार्ग दुराराध्य है - आसान नहीं है। शास्त्र पढ़करके आत्मकल्याण करना वह आसान नहीं है, दुराराध्य है। परमावगाढ़दशा प्राप्त होनेके पहले उसका आराधन करना बहुत कठिन है। परमावगाढ़दशा माने क्या? आत्मकल्याणकी भावनाकी परमावगाढ़दशा, वह प्राप्त करनेके पहले, इस मार्गमें गिरनेके बहुत स्थान हैं, गिरनेके बहुत स्थान हैं। सबसे पहले तो संदेह होगा (कि) कहनेवालेने ऐसा क्यों कहा ? कहनेवाले पर शंका हो जायेगी (कि) यह बात हमको बराबर नहीं लगती है। कहनेवाले पर शंका आ जायेगी और विकल्प बढ़ेंगे। समाधान नहीं होगा तो विकल्प बढ़ेंगे। स्वच्छंदता आ जायेगी - एक द्रव्य दूसरे द्रव्यसे भिन्न है, दया करनेका क्या कारण है? पूजा-भक्तिका क्या कारण है ? सत्संग करनेका क्या कारण है?- जब एक द्रव्य, दूसरे द्रव्यसे भिन्न है; कोई किसीका कुछ कर सकता नहीं है (इस प्रकार से) स्वच्छंदमें चला जायेगा।

प्रश्न : परमअवगाढ़ भावनाका कौनसा stage है?

पू.भाईश्री : पहलेसे आत्मभावनामें, तीव्र आत्मभावनामें आना चाहिये और यह stage की दृष्टिसे देखें तो वेदनासे शुरुआत होती है और खास प्रकारसे तो पूर्णताके लक्ष्यसे शरूआत होती है। पूर्णताके लक्ष्यके समयमें भावना बहुत अवगाढ़ बनती है, फिर शास्त्र पढ़ें तो - मेरा जो लक्ष्य है उसी लक्ष्यसे यह बात भी लिखी गई है - इस प्रकार बात और इसका आशय पकड़नेमें आयेगा। कहनेवाले का आशय पकड़नेमें आयेगा, नहीं तो तर्क, या ज्यादा उघाड़वाला (क्षयोपशम) हो तो अतिपरिणामीपना, (हो जाता है)। जैसे ही जानकारी हुई कि मानो ज्ञान हो गया। बोलेगा कि आप ऐसा करो, खुदको ज्ञाता-दृष्टा मान लो बस ! ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ज्ञाता-दृष्टा हूँ, ज्ञाता दृष्टा हूँ - ज्ञाता दृष्टापना आया नहीं होता और अतिपरिणामीपना हो जाता है, जैसे मानो वैसा परिणमन हो गया ऐसी बात करता है। ये सब प्रकारकी गलतियाँ जीवके बार-बार उस मार्गसे गिरनेका कारण बनती हैं और उसको आगे बढ़ने नहीं देती। इसलिये परमावगाढ़दशाको प्राप्त किये बिना ज्ञानमार्गसे कोई आत्मकल्याण कर सकता नहीं।

परमावगाढ़दशामें सबसे पहले यह बात आती है, मानो किसीको प्रारंभमें ही परमावगाढ़दशा आयी - मुझको आत्मकल्याण कर लेना (है) बस ! मुझे आत्मकल्याण कर लेना (है)- उसको सबसे पहले यह बात आती है कि, जिन्होंने आत्मकल्याण किया है उनके चरणमें मुझे जाना चाहिये; उसे very first thought (सबसे पहला विचार) यही आता है। वह ग्रंथ हाथमें नहीं लेगा। वह कोई प्रयोगमें भी नहीं चढ़ेगा - पहले उसको ऐसा होगा कि मुझे ज्ञानीका संग चाहिये। जिसने रास्ता देखा है उनके साथ मुझे चलना है। माने अपनी मनमानी नहीं करनी है। अवगाढ़दशामें यह बात आती है। फिर ज्ञानी बताते हैं कि तुम्हारे लायक यह ग्रंथ है, तुम्हारे लायक वह ग्रंथ है, तुम इसको पढ़ो, तुम उसको पढ़ो।

कृपालुदेव तो इतने विचक्षण थे कि अन्य मतके ग्रन्थ भी पढ़नेके लिये सूचना करते थे। योगवाशिष्ठ का पहला और तीसरा प्रकरण पढ़ना, बाकीके प्रकरण आपलोगोंको पढ़ने लायक नहीं है। मोक्षमार्गप्रकाशक पढ़ने को (कहते) थे (क्योंकि) उसमें टोडरमलजीसाहबने

श्वेताम्बरमतका कड़ा निषेध किया है, श्वेताम्बर और स्थानकवासी दोनोंका निषेध किया, सभी अन्य जैनेतर मतोंका (भी निषेध किया है) श्वेताम्बर, स्थानकवासीको भी जैनेतरमें लिये हैं और दूसरे जैनके इतर मत हैं उनकी भी आलोचना की है, टिप्पणी की है। लिखा है कि कहीं भी समाधान नहीं हो तो ज्ञानीके पाससे समाधान करनेकी बात रखना, लेकिन अपनेआप कहनेवालेका निषेध नहीं करना। कुछ बातें ऐसी होती हैं। क्या है (कि) यह तो जैनके नामसे चलते हैं; वास्तवमें वह जैन नहीं हैं, बहुत arguments (दलील) दी है, ज्ञानीके संगमें उसका समाधान करनेकी एक बातको रख लेना। कोई prejudice (पूर्वाग्रह) में नहीं आना। फिर भी पढ़ना तो सही, उसको पढाऩेमें कृपालुदेवकी बहुत विचक्षणता थी, (उनको) मालूम था कि हरेक मनुष्यको अपने-अपने संप्रदायका पक्ष होता ही है, जाने-अनजानेमें होता ही है। वह पक्षबुद्धि-संप्रदायबुद्धिमेंसे निकालनेके लिये ऐसे ग्रंथ भी पढ़ाते थे। ऐसे-ऐसे ग्रन्थ भी पढ़ाते थे, (कि जीव) संप्रदायबुद्धिसे छूट जाये। क्या पढ़ना ? क्या नहीं पढ़ना वह ज्ञानीकी सूचना अनुसार होवे तो बराबर है वरना उसमें गिरनेके स्थान बहुत हैं।

प्रश्न : ज्ञानीके मार्गमें चलनेवालेका निश्चय कैसा होता है ?

पू. भाईश्री : ज्ञानीके मार्गमें आनेवालेका निश्चय ऐसा होता है कि ज्ञानी कहे वही बात बराबर है, यह संप्रदायमें गड़बड़ बहुत है और वह तो खुल्ली बात है। किसीको भी समझमें आये ऐसी बात है कि हरेक संप्रदायमें गड़बड़ बहुत चलती है, अभी कोई संप्रदाय ऐसा नहीं चलता (है) कि जिसमें गड़बड नहीं हो, ये समझमें आये ऐसी बात है। इसलिये संप्रदायबुद्धि मंद पड़ जाये, वैसा निश्चय उसको होता है, कि मुझे ज्ञानीके मार्ग पर ही चलना है। फिर उसको कोई तकलीफ - अड़चण नहीं आती।

''सत्संगके बिना ध्यान तरंगरूप हो जाता है।'' शास्त्रके बाद ध्यानकी बात ली (है)। साधन है न, शास्त्र-आगम भी एक साधन है, ध्यान करना वह (भी एक) साधन है, दोनों के लिये सूचना की है, कि लेकिन पहले सत्संग करना। सत्संगमें ध्यान किस stage में आता है ? कौनसा ध्यान किस प्रकारका होता है ? ध्यानके प्रकार कितने ? यह सब समझने के बाद, अपनी भूमिका हो तो ही ध्यान करना । ध्यानकी भूमिका हो तो ही ध्यान करना, नहीं तो ध्यानमें तरंग उठेंगे, कई प्रकारके तरंग उठेंगे कि मुझे शांति हो गई, या (मुझे) प्रकाश दिखाई दिया, मुझे ऐसा हो गया, मुझे तेजकी लकीर दिखी, ऐसे बहुत कुछ आता है, ऐसे बहुत मिलते हैं, क्या ? मुझे इस तरह गोल चक्कर, चक्कर, चक्कर दिखाई देता है - लेकिन ये सब वास्तवमें चक्करमें पड़नेकी बातें हैं। सत्संगके बिना ध्यानमें प्रवेश करना नहीं - सत्संग किया नहीं और सीधे चले विपश्यनामें - अभी तो सत्संग पर्याप्त किया न हो, सत्संग द्वारा बराबर योग्यता आयी न हो और विपश्यना, प्रेक्षा और मद्रासके तरफ कुछ चलता है - तीसरा (प्रकार) चलता है न ? उसकी शिबिर और उसके ध्यान केन्द्र और उसके योगमें चले जाते हैं। परन्तु ज्ञानीपुरुषने इसकी मना की है।

४६६ नंबरका पत्र है, अपने कृपालुदेवके एक खास अनुयायी थे, थोड़ेसे परिचयमें आनेके बाद उनको ऐसा लगा कि हम विपश्यनामें दोड़धाम तो कर आये लेकिन कुछ भूल की हो, ऐसा लगता है। इसलिये private में (एकांतमें) पूछा कि मैं तो विपश्यनामें गया था, अच्छा भी लगा था, लेकिन आपकी बात से कुछ शंका उद्‌भव होती है। (मैंने कहा कि) कृपालुदेवका ग्रन्थ तो आपने पढ़ा हुआ है, बहुत वांचन किया है, पत्रांक ४६६ में छठ्ठा पेराग्राफ है कि **''जीव अपनी कल्पनासे मान लें...''** हमने यह लाइन उनको पढ़ाई, कृपालुदेवको मानते थे इसलिये उनको अंतरमें तुरंत (बात) बैठ गई, वरना हमारे कहनेसे तो नहीं बैठती।

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या १० पर..)

पूज्य बहिनश्री चंपाबेनकी विडीयो तत्त्वचर्चा
मंगल वाणी-सी.डी. १४-A

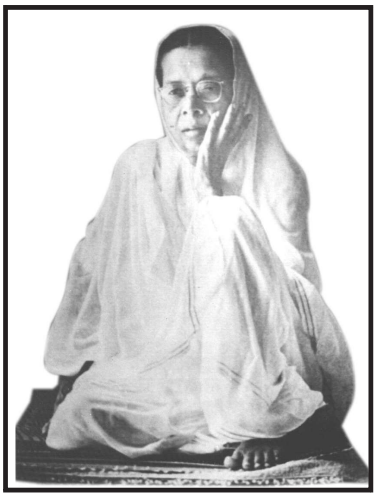

मुमुक्षु :- ज्ञान अपेक्षासे विषय करता है तब मुख्य और गौण, पर्याय गौण रहती है। श्रद्धा जब आत्मा को श्रद्धासे विषय करती है कि मैं ज्ञायक ही हूँ, अन्य कुछ नहीं हूँ, इतना ज़ोर देती है उस वक्त ज्ञान के परिणमन में तो जैसा है वैसा ज्ञान तो रहता है।

समाधान :- ज्ञान वैसे ही रहता है। दृष्टि को अन्य किसीका ख्याल ही नहीं है। अपना अस्तित्व ग्रहण करती है, मैं यह ज्ञायक ही हूँ, ऐसे। उसी वक्त ज्ञान भी, मैं यह ज्ञायक हूँ, उसे पर्याय गौण रहती है। उसी वक्त ग्रहण करता है, उसी वक्त।

मुमुक्षु :- मेरा प्रश्न क्या है कि ज्ञान मुख्य-गौण करता है और दृष्टि एकान्त करती है तो आत्मा जब दृष्टि अपेक्षासे ग्रहण करता है कि मैं ज्ञायक हूँ, तो उसमें ज़ोर विशेष आता होगा?

समाधान :- उसे और कोई ख्याल नहीं है। एक द्रव्य का ही अस्तित्व ग्रहण किया है इसलिये दृष्टि अपेक्षासे उसे मुख्य करती है इसलिये उसमें ज़ोर ज्यादा आता है। ज्ञान में भी ज़ोर तो आता है, वह ज़ोर तो बराबर देता है, लेकिन दूसरा ख्याल में रखता है।

मुमुक्षु :- दूसरा ख्याल में रखनेपर कुछ कचास आती हो और उसमें (-श्रद्धा में) विशेषता आती हो ऐसा बने? क्योंकि ऐसे तो जब दृष्टि एकान्त ग्रहण करती है उस वक्त भी ज्ञान तो साथ में रहता है।

समाधान :- ज्ञान साथ में रहता है, वह कहता है, दृष्टि जो कहती है वह बराबर है, ऐसा ज्ञान जानता है। दृष्टिने जो विषय किया वह दृष्टि की अपेक्षासे बराबर है। ज्ञान में इसप्रकार ग्रहण हुआ है। ज्ञान दृष्टि को बराबर जानता है कि यह दृष्टि का विषय है और ज्ञान भी ऐसे ही जानता है कि दृष्टि की अपेक्षासे बराबर है, इसप्रकार वह स्वयं भी ज़ोर देता है। परन्तु जानने का है वह बाकी रह जाता है। इसलिये श्रद्धा का विषय, मुख्यपने मुख्य रखना यह विषय श्रद्धा का है। ज्ञान का विषय है वह जानना है। ज़ोर देना श्रद्धा का विषय है, लेकिन ज्ञान में भी ज़ोर देना वह उसका विषय है। क्योंकि वह जैसा जानता है वैसा ज़ोर देता है। ज्ञान का विषय जानना है और ग्रहण करना दृष्टि का विषय है। ज्ञान ग्रहण करता है। ग्रहण तो करता है परन्तु मुख्य विषय दृष्टि का है।

मुमुक्षु :- क्योंकि मोक्षमार्ग के तीन अंग सम्यग्दर्शन, सम्यग्ज्ञान और सम्यक्चारित्र में प्रधानता सम्यग्दर्शन को देते हैं उसमें विशेष (कोई बात है)?

(अनुसंधान पृष्ठ संख्या ११ पर..)

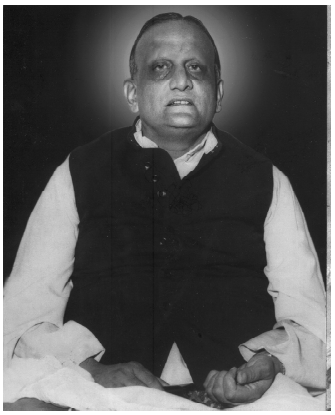

द्रव्यदृष्टि प्रकाशमें से 'पुरुषार्थका स्वरूप' सम्बन्धित पूज्य श्री निहालचंद्रजी सोगानीजी के चयन किये गये वचनामृत

सहज पुरुषार्थ में थकान नहीं लगेगी। सोने आदि के भाव में भी दुःख लगेगा, निद्रा में भी थकान लगेगी। (सहज पुरुषार्थ के साथ सहज निराकुलता अविनाभावी रूप से रहती है; अतः सोने आदि के भाव में तथा निद्रा में भी थकान मालूम पड़ती है, ऐसा ही सहज पूरुषार्थ का स्वरूप है। स्वस्वभाव के अवलंबन में निर्विकल्प सुख सहज वर्तता है; जबकि स्वरूप के - विश्रामधाम के - अवलंबन को छोड़कर शरीराश्रित विश्राम के विकल्प में सुख कैसा? वह विकल्प तो स्वयं ही दुःखरूप है।) (३६२)

*

पुरुषार्थ तो चारित्र में है, दृष्टि में क्या पुरुषार्थ !

प्रश्न :- क्या दृष्टि में पुरुषार्थ नहीं है ?

उत्तर :- दृष्टि में पुरुषार्थ तो है, लेकिन चारित्र की अपेक्षा से बहुत कम पुरुषार्थ है। चारित्र में तो बड़ा पुरुषार्थ है। (जिस पुरुषार्थ से सम्यग्दर्शन होता है उसकी तारतम्यता तथा मुनिदशायोग्य पुरुषार्थ की तारतम्यता में कितना बड़ा अंतर है, वह सम्यग्दृष्टि को ही मालूम पड़ता है। परंतु मिथ्यादृष्टि को पुरुषार्थ विषयक ऐसा ज्ञान नहीं होता।) (३८०)

*

पुरुषार्थ के धाम में पुरुषार्थ जम गया, वही पुरुषार्थ है। (५०५)

*

अज्ञान में जीव, वांचन-श्रवण-मनन आदि का जो पुरुषार्थ करता है उसमें तो थाक (बोझा) लगता है; लेकिन जिसमें थकान आवे - वह पुरुषार्थ ही कहाँ ? सहज पुरुषार्थ में तो बोझा लगता ही नहीं। (यहाँ पुरुषार्थ का स्वरूप दर्शाया है : जो सहज पुरुषार्थ हो तो उसमें कभी थकान नहीं आती है बल्कि विकल्प की थकान अवश्य मिट जाती है। जैसे जीवों को श्वासोच्छ्वास में कभी थकान नहीं लगती क्योंकि वह उनका व्यवहारजीवन (प्राण) है; वैसे ही सहज पुरुषार्थ आत्मा का जीवन है अतएव उसमें थकान कैसी ?) (५४९)

*

पुरुषार्थ की व्याख्या : सहज उद्यम।

'मैं' तो अनादि-अनंत अपने स्वरूप में स्थित हूँ, निर्विकल्प हूँ जो सुखरूप है। कृत्रिम उद्यम तो विकल्पवाला खोटा पुरुषार्थ है, दुःखरूप है। (५८२)

*

प्रश्न :- पुरुषार्थ कैसे करना ?

उत्तर :- ''मैं वर्तमान में ही अनंतवीर्य का पिंड हूँ' - यही पुरुषार्थ है।

प्रश्न :- दृष्टि तो फेरना है न ?

उत्तर :- 'मैं खुद ही दृष्टा हूँ' - इस भाव में दृष्टि नहीं फेरना है (वह तो स्वयं फिर जाती है); वर्तमान में ही कृतकृत्य हूँ, इसमें कुछ करना नहीं है। (६३८)

प्रणिपात स्तुति

हे परमकृपालु देव! जन्म, जरा, मरणादि सर्व दु:खोंका अत्यंत क्षय करनेवाला वीतराग पुरुषका मूलमार्ग आप श्रीमानने अनंत कृपा करके मुझे दिया, उस अनंत उपकारका प्रत्युपकार करनेमें मैं सर्वथा असमर्थ हूँ, फिर आप श्रीमान कुछ भी लेनेमें सर्वथा नि:स्पृह हैं; जिससे मैं मन, वचन, कायाकी एकाग्रतासे आपके चरणारविंदमें नमस्कार करता हूँ। आपकी परमभक्ति और वीतराग पुरुषके मूलधर्मकी उपासना मेरे हृदयमें भवपर्यंत अखण्ड जागृत रहें, इतना माँगता हूँ, वह सफल हो।

ॐ शांति: शांति: शांति: ।

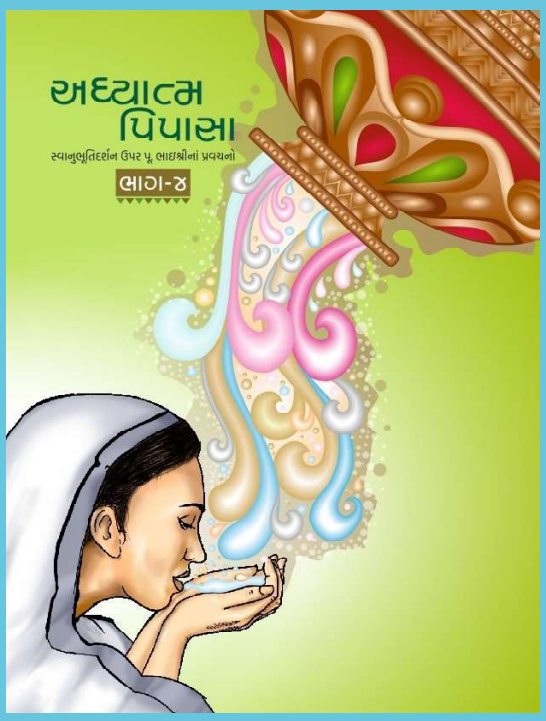

नया प्रकाशन (सिर्फ गुजराती भाषामें)

'अध्यात्म पिपासा' (भाग-४)

प्रशममूर्ति धन्यावतार पूज्य बहिनश्रीकी तत्त्वचर्चाका ग्रंथ 'स्वानुभूतिदर्शन' पर अध्यात्मयोगी पूज्य भाईश्री शशीभाई के प्रवचनों की श्रृंखला 'अध्यात्म पिपासा' भाग-४ (केवल गुजरातीमें) पूज्य भाईश्री की ९१ वीं जन्म जयंतिके अवसर पर दि : २०-१२-२३ को प्रकाशित किया जायेगा। जो मुमुक्षु गुजराती भाषा से परिचित हो और इसके स्वाध्याय के लिये इच्छुक हो वे अपनी प्रत दि : २०-११-२३ तक रजिस्टर करवा लें।

- श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट

श्री नीरव वोरा ९८२५०५२९१३

REGISTERED NO. : BVHO - 253 / 2021-2023
RENEWED UPTO : 31/12/2023
R.N.I. NO. : 69847/98
Published : 10th of Every month at BHAV.
Posted at 10th of Every month at BHAV. RMS
Total Page : 20

'सत्पुरुषों का योगबल जगत का कल्याण करे'

... दर्शनीय स्थल...

श्री शशीप्रभु साधना स्मृति मंदिर
भावनगर

स्वत्वाधिकारी श्री सत्श्रुत प्रभावना ट्रस्ट की ओर से मुद्रक तथा प्रकाशक श्री राजेन्द्र जैन द्वारा अजय ऑफसेट, १२-सी, बंसीधर मिल कम्पाउन्ड, बारडोलपुरा, अहमदाबाद-३८० ००४ से मुद्रित एवम् ५८० जूनी माणिकवाडी, पूज्य गुरुदेवश्री कानजीस्वामी मार्ग, भावनगर-३६४ ००१ से प्रकाशित
सम्पादक : श्री राजेन्द्र जैन -09825155066

Printed Edition :
Visit us at : http://www.satshrut.org

If undelivered please return to ...
Shri Shashiprabhu Sadhana Smruti Mandir
1942/B, Shashiprabhu Marg, Rupani,
Bhavnagar - 364 001

mobile phone 9374925041